International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

श्रीभक्तिरसामृतसिंधु में भक्ति

रेखा मनोचा

शोध–छात्रा, हिन्दी विभागद्रविड़ियन विश्वविद्यालय कुप्पम, आंध्र प्रदेश

शोध सार

श्री रूपगोस्वामी के अनुसार अन्य कामनाओं से रहित, ज्ञान–कर्मादि से अनावृत तथा अनुकूल–भाव से श्रीकृष्ण का जो अनुशीलन है, वह उत्तमा भक्ति है। पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण में अहैतुकी एवं अव्यवहिता भक्ति को निर्गुण भक्ति योग कहा गया है, जो सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार की भक्ति के साधक सर्वतोभाव से सेवा ही चाहते हैं। श्री भगवान के द्वारा पाँच प्रकार की मुक्तियाँ देने पर भी वे उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं। श्रीभक्तिरसामृतसिंधु में श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के तीन प्रकार बताए हैं– साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति।

मुख्य शब्द

भक्ति, अनुशीलन, निष्काम, ऐश्वर्य, प्रारब्ध, मोक्ष, हृदय, प्रेम, श्रद्धा, स्मरण आदि।

श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति पद के द्वारा कर्म और ज्ञान दोनों मार्गों का निराकरण किया है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म विषयक साहित्य में सदा से श्रीमद्भागवत्, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र इस प्रस्थानत्रयी का तथा इतिहास (श्री महाभारत) एवं पुराणों का प्रामाणिक स्थान रहा है। ग्रंथकार ने इन शास्त्रों के आधार पर भक्ति की सर्वोत्कर्षता, सर्व साधन वरीयता अपने ग्रंथ में प्रतिपादन कर कर्म एवं ज्ञान मार्गों के तर्क–वितर्कों को निर्मूल कर दिया है अर्थात जैसे सागर बड़वानल को निरस्त कर देता है, उसी प्रकार श्रीभक्तिरसामृतसिंधु कर्म एवं ज्ञान मार्ग के प्रतिपादन को निरूत्तर कर देता है।

भक्ति की विशेषताओं को अच्छी तरह प्रतिपादित करने के लिए भक्ति तत्वज्ञ पुरुषों के मतानुसार उत्तमा भक्ति के लक्षण इस प्रकार हैं।

''अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृत्तम्।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा।।''[1]

अन्य कामनाओं से रहित, ज्ञान–कर्मादि से अनावृत तथा अनुकूल–भाव से श्रीकृष्ण का जो अनुशीलन है, वह उत्तमा भक्ति है।

श्री रूपगोस्वामी के अनुसार यह उत्तम भक्ति का लक्षण है। इस लक्षण को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। एक 'स्वरूप लक्षण' दूसरा 'तटस्थ लक्षण'। 'आनुकुल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरूत्तमा' यह भक्ति का स्वरूप लक्षण है और शेष आन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृत्तम् यह उसका तटस्थ लक्षण है।

अनुकूल भाव से श्रीकृष्ण का अनुशीलन ही 'उत्तमा भक्ति' है। अनुशीलन शब्द का साधारण अर्थ होता है– निरंतर गंभीर रूप से अभ्यास करना। यहाँ अनुशीलन शब्द से क्रिया मात्र का ग्रहण होता है। कायिक, वाचिक और मानसिक तीन प्रकार की क्रियाएँ होती हैं। अपने इष्टदेव कृष्ण को प्रिय लगने वाली प्रवृति का ग्रहण 'आनुकूल्य'' पद से होता है। गौड़ीय वैष्णव मतानुसार– श्रीकृष्ण साक्षात स्वयं भगवान हैं अवतार नहीं। परमात्मा के प्रिय शारीरिक, वाचिक और मानसिक व्यापारों का करना भक्ति कहलाता है।

अन्याभिलाषिताशून्य और ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ये दोनों भाग भक्ति के तटस्थ लक्षण के रूप में लिखे गए हैं। भक्त यदि किसी फल–विशेष की कामना से कृष्णानुशीलन करता है तो उसका वह सकाम कर्म उत्तम भक्ति की श्रेणी में नहीं आता है। केवल निष्काम–भाव से किए गए प्रभु प्रिय व्यापार ही उत्तम भक्ति की सीमा में आ सकते हैं। भक्ति के उक्त लक्षण के समर्थन में ''श्रीनारदपञ्चरात्र'' का एक श्लोक उद्धृत है–

''सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम्
हृषीकेण हृशीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते।।''[2]

सब प्रकार की उपाधियों से रहित, तन्मयता से अनुकूल–भाव से, निर्मल सब इंद्रियों से श्रीकृष्ण का जो सेवन है, उसे भक्ति कहते हैं। पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण में अहैतुकी एवं अव्यवहिता भक्ति को निर्गुण भक्ति योग कहा गया है, जो सर्वोत्कृष्ट है। इस प्रकार की भक्ति के साधक सर्वतोभाव से सेवा ही चाहते हैं। श्री भगवान के द्वारा पाँच प्रकार की मुक्तियाँ देने पर भी वे उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं। पांच प्रकार की मुक्तियाँ इस प्रकार हैं–

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

1. सालोक्य– इस मुक्ति में भक्त श्री भगवान के लोक में उनके साथ वास करता है।
2. सार्ष्टि– इस मुक्ति में भक्त की भगवान के समान ऐश्वर्य या गति को पार्षद देह पूर्वक प्राप्त करता है।
3. सामीप्य– इनमें भक्त नित्य पार्षद देह से सदा श्री भगवान के समीप रहता है।
4. सारूप्य– इनमें भक्त को अपने उपास्य भगवत स्वरूप के समान रूप प्राप्त होता है।
5. सायुज्य– परब्रह्म के किसी एक गुणातीत स्वरूप में प्रवेश कर जाने का नाम सायुज्य या एकत्व मुक्ति है।

भक्ति के साधक इन पांच प्रकार की मुक्तियों को प्राप्त न कर केवल परम पुरुषार्थ–चरमतम साध्य वस्तु श्री कृष्ण सेवा में ही मगन रहते हैं।

''क्लेशघ्नी शुभदा मोक्षलघुताकृत् सुदुर्ल्लभा।
सांद्रानन्द विशेषात्मा श्रीकृष्णाकर्षिणी च सा।।"[3]

इस श्लोक में उत्तमा भक्ति की विशेषताओं का वर्णन किया गया है। भक्ति क्लेशों का नाश करने वाली 2. कल्याणों को प्रदान करने वाली 3. मुक्ति को तुच्छ बना देने वाली 4. अत्यंत कठिनता से प्राप्त होने वाली 5. अपरिमेय आनंद विशेष से परिपूर्ण 6. भगवान श्रीकृष्ण को आकृष्ट करने वाली है।

1. क्लेशहारिणी

इन छः विशेषणों में से सर्वप्रथम भक्ति के क्लेश निवारक तत्व का वर्णन किया गया है। क्लेश तीन प्रकार के होते हैं–1 पाप 2. पाप का बीज 3. अविद्या। इनमें पाप दो प्रकार के हैं 1 अप्रारब्ध 2, प्रारब्ध।

पाप

किसी जीवकी हत्या चोरी, पर–स्त्रीगमन, झूठ बोलना, दूसरे की अनिष्ट चिंता, शराब पीना, माँस–अंडे खाना आदि असत कर्मों को, जो अपने शरीर और इंद्रियों के लिए शरीर, मन तथा वाणी द्वारा किए जाते हैं, उन्हें शास्त्र में पाप कहा गया है।[4]

पाप बीज

पाप करने की वासनाएँ जो चित्त में गुप्त रूप से रहती हैं, उन्हें 'पाप–बीज' कहते हैं।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

अविद्या

अनित्य वस्तुओं को नित्य जानना दुख को सुख तथा देह इंद्रियादि अनात्म वस्तुओं में आत्म बुद्धि होने का नाम अविद्या है। अप्रारब्धं भवेत पापं प्रारब्धं चेति तद् द्विद्या।।[5]

पाप दो प्रकार के हैं– अप्रारब्ध तथा प्रारब्ध।

अप्रारब्ध पाप– वे हैं, जो अनेक जन्मों में किए हुए संचित रूप में जमा हैं और अप्रकाशित हैं। अर्थात् जिनका फल भुगतना अभी आरंभ नहीं हुआ।

प्रारब्ध पाप– वे हैं जो अनेक जन्मों के संचित पापों में से कुछ हैं और जिनका फल वर्तमान शरीर में भुगतना आरंभ हो जाता है।

''यथाऽग्नि सुसभिद्धार्चिः करोत्येधांसि भस्मसात्।
तथा मद्विषया भक्तिरूद्ध वैनांसि कृत्सनशः।।''[6]

उपर्युक्त श्लोक भागवत के ग्यारहवें स्कंध में से उद्धृत किया गया है।

भक्ति अप्रारब्ध पापों का नाश करती है। इस विषय में श्री भागवत् में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है– "हे उद्धव! जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि लकड़ियों को जलाकर राख कर देती है। उसी प्रकार मेरी भक्ति समस्त पापों को जला कर राख कर देती है।"

जिस पाप का फल भुगतना आरंभ हो गया है, उस पाप का भी भक्ति नाश कर देती है। पद्म पुराण में भी कहा गया है– जिनकी आत्मा श्रीकृष्ण में लीन या समर्पित है उनके अप्रारब्ध फल, कूट, बीज, एवं फलोन्मुख पाप क्रमशः विनष्ट हो जाते हैं।

भक्तजन श्री भगवान के चरण कमलों की प्रतिक्षण भक्ति करते हुए कर्मवासनामय अहंकार को नष्ट कर देते हैं। कर्मवासनाओं में बंध कर जो अहंकार होता है वही अविद्या है। भक्ति से ग्रंथि अर्थात् अविद्या दूर हो जाती है। भक्ति से अविद्या का अनायास ही नाश हो जाता है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

2. कल्याणों को प्रदान करने वाली (शुभदायिनी)

जगत के समस्त प्राणियों को संतुष्ट करना, समस्त प्राणियों का अनुराग प्राप्त करना, सदगुणों से युक्त होना तथा सुख– इन चारों को विद्वान लोग 'शुभ' नाम से पुकारते हैं। भगवद् भक्ति इन चारों प्रकार के शुभों को प्रदान करने वाली है।

जगत के समस्त प्राणियों को संतुष्ट करना और जगत की अनुरक्तता प्राप्त करना इन दोनों की सिद्धी भक्ति के द्वारा हो सकती है। जो भगवान को संतुष्ट कर लेता है तो ऐसा समझा जाता है उसने जगत को संतुष्ट कर लिया उसके प्रति जगत के समस्त प्राणी और स्थावर भी अनुरक्त हो जाते हैं। श्री भगवान की भक्ति तीसरे शुभ समस्त सद्गुणों को प्रदान करती है। जिसमें भगवान की निष्काम भक्ति है उसमें समस्त गुणों के साथ देवताओं का निवास होता है।

सुखं वैषयिकं ब्राह्ममैश्वरं चेति तत्त्रिधा।[7]

3. भक्ति का मोक्षलघुताकर्तृव्य

''हृदय में तनिक सा भी प्रेम अर्थात् रति के उदय होने पर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– ये चारों पुरुषार्थ तृण के समान हो जाते हैं अर्थात् भक्त की दृष्टि में वे अत्यंत तुच्छ हो जाते हैं।''

नारदपञ्चरात्र के अनुसार–

''हरिभक्ति महादेव्याः सर्वा मुक्तयादि सिद्धयः।
भुक्त पश्चाद्भुतास्तस्याश्चेटिकावदनुव्रताः।।''[8]

अर्थात् मुक्ति आदि सारी सिद्धियाँ और अनेक प्रकार के संसार के सुख भोग दासियों की तरह उस भगवद् भक्ति रूपा महारानी के पीछे–पीछे चलती हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति मुक्ति को भी तुच्छ कर देने वाली है।

साधनौघैरनासङ्गैरलभ्या सुचिरादपि।।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

हरिणा चाश्वदेयेति द्विधा सा स्यात्सुदुर्लभा।।[9]

4. भक्ति की सुदुर्लभता

श्री भगवान की भक्ति दो कारणों से अति दुर्लभ है। एक तो अनासंग साधनों से वह प्राप्त नहीं होती। दूसरे श्री भगवान अपनी भक्ति को शीघ्र प्रदान नहीं करते।

अनासंग साधनों का अभिप्राय है आसक्ति एवं रुचि रहित साधना। श्रद्धा, साधुसंग, भजन–क्रिया आदि के बाद आसक्ति, निष्ठा और रुचि उदित हुआ करती है। प्रेम के विकास क्रम की इस भूमिका के आधार पर जब तक आसक्ति उदित नहीं होती, तब तक अनासंग साधन कहा जाता है। अतः श्री भगवान की साक्षात स्मृति के रहित जो साधन हैं वे अनासंग हैं।

दूसरे श्री भगवान अपनी भक्ति को सहज प्रदान नहीं करते इसलिए वह सुदुर्लभ है। भक्ति को ग्रहण करने के लिए विशेष योग्यता अनिवार्य है। वह योग्यता आसंग–भजन से एवं अन्याभिलाषाशून्य, भगवत् अनुशीलन से प्राप्त होती है। योग्यता प्राप्त होने पर भक्ति भक्त के हृदय में आविर्भूत हो उठती है। श्री भगवान भक्ति एवं भुक्ति तो झट से दे देते हैं। वे सहज में भक्ति नहीं देते हैं क्योंकि उन्हें भक्त की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती है इस प्रकार भक्ति की सुदुर्लभता सिद्ध होती है।

तंत्र में कहा गया है कि ज्ञान के द्वारा मुक्ति को, यज्ञादि पुण्य कर्मों के द्वारा भुक्ति अर्थात् भोगों को प्राप्त करना सहज है किंतु हरिभक्ति को हजारों साधनों द्वारा भी प्राप्त करना अति कठिन है।

5. सान्द्रानंद विशेषात्मात्व (अपरिमेय आनंद विशेष से परिपूर्ण)–

भगवद् भक्ति सान्द्रानंद– घनीभूत आनंद स्वरूप है। यदि ब्रह्मानंद को पर्राद्ध गुणा कर दिया जाए तो भी वह भक्ति के सुख सागर के एक परमाणु के समान नहीं हो सकता। अर्थात् ब्रह्मा जी की आयु के आधे काल पर्यन्त समाधि में स्थित रहने से जो ब्रह्मअनुभव आनंद प्राप्त होता है, भगवत् सेवानंद सागर के एक परमाणु की भी वह बराबरी नहीं कर सकता।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

भक्त को भगवान के साक्षात्कार सुख के विमल सिंधु में स्थित सारे ब्रह्म सुख भी गौ के खुर के समान क्षुद्र दिखलाई देते हैं। अर्थात् भक्त श्री भगवान की भक्ति के समक्ष धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भी तृण के समान समझते हैं।

6. श्रीकृष्णाकर्षिणी

श्रीकृष्ण को आकर्षित करने की एक मात्र सामर्थ्य प्रेम भक्ति में है। वे अकेले ही नहीं श्री सहित प्रेमी भक्तों की ओर खिंचे चले आते हैं, बल पूर्वक उन्हें प्रेम भक्ति आकर्षित कर लेती है। पांडवों को संबोधित करते हुए श्री भागवत् में नारद जी ने भी कहा है कि आप लोग बहुत भाग्यवान हैं क्योंकि आपके घर में साक्षात् परब्रह्म श्रीकृष्ण नररूप धारण कर निवास करते हैं और समस्त जगत को पवित्र करने वाले मुनिजन उनके दर्शन करने के लिए आप के घर में पधारते रहते हैं।

त्रिद्या भक्ति के साथ छह गुणों का संबंध– सा भक्तिः साधन भावः प्रेमा चेति त्रिधोदिता।[10] श्री रूप गोस्वामी ने भक्ति के तीन भेद किए हैं– 1 साधन भक्ति 2 भाव भक्ति 3 प्रेम भक्ति।

श्री जीव गोस्वामी का मत है कि श्रीभक्तिरसामृतसिंधु में भक्ति के तीन भेद दिखलाए गए हैं, किंतु मुख्य रूप से भक्ति के दो भेद हैं–1 साधन भक्ति 2 साध्य भक्ति। साध्य भक्ति को 'हृदयनिष्ठा भक्ति भी कहा जाता है। इस हृदयनिष्ठा भक्ति के अंतर्गत उन्होंने भाव भक्ति तथा प्रेमभक्ति को माना है।

किंतु श्री विश्वनाथ चक्रवर्ती ने कहा है– भक्ति साधन एवं साध्य दो प्रकार की होते हुए भी यहाँ उनके तीन प्रकार माने गए हैं। यहाँ भाव भक्ति को पृथक रूप में गिना गया है। क्योंकि भाव भक्ति साध्य भक्ति के अंतर्भुक्त नहीं मानी जा सकती।

भाव भक्ति साधन भक्ति के अन्तर्भुक्त भी नहीं है, क्योंकि साधन भक्ति को श्री भक्तिरसामृतसिंधु (1–2–2) में साध्यभावा कहा गया है। अर्थात् साधन भक्ति भाव भक्ति को उदित करती है। साधन भक्ति के आचरण करते करते भाव भक्ति की उत्पत्ति होती है। भाव भक्ति जन्य है और साधन भक्ति जनक है। जन्य पदार्थ जनक पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिए यहां भक्ति के तीन भेद स्वीकार किए गए हैं।

श्री रूप गोस्वामी के अनुसार भक्ति तीन प्रकार की है– साधन भक्ति, भाव भक्ति और प्रेम भक्ति। प्रथम साधन रूपा में केवल क्लेशघनत्व और शुभदत्व दो गुण

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

रहते हैं। दूसरी भाव रूपा भक्ति में इन दो गुणों के अतिरिक्त मोक्षलघुकृतात्व तथा सुदुर्लभता ये दो गुण और बढ़ जाते हैं, चार गुण हो जाते हैं। इसके बाद तीसरे प्रकार की प्रेमरूपा भक्ति में इन चारों के अतिरिक्त सान्द्रानंद विशेषत्व तथा श्रीकृष्णाकर्षणत्व इन दोनों गुणों का समावेश होकर उसमें छः गुण हो जाते हैं। इस प्रकार दो–दो गुणों की वृद्धि द्वारा यहाँ त्रिविध भक्ति में इन छह गुणों का समावेश हो जाता है। साधन रूपा भक्ति में दो गुण भावरूपा भक्ति में चार गुण और प्रेम रूपा भक्ति में छः गुण होते हैं।

साधन भक्ति :

''कृति साध्या भवेत साध्यभावा सा साधनभिधा।
नित्यसिद्धस्य भावस्य प्राकट्य हृदि साध्यता।।''[11]

जो भक्ति इंद्रियों की प्रेरणा या व्यापार से साधित होती है और जिसके द्वारा भाव भक्ति की सिद्धि या प्राप्ति होती है, उसे साधन भक्ति कहते हैं। नित्य सिद्ध भाव का हृदय में प्रकट होना ही भक्ति की साध्यता है।

उत्तमा भक्ति के जिन अंगों का देह इंद्रियों से आचरण किया जाता है, उन आचरणों या साधनों को 'साधन भक्ति' कहते हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि साधन जो श्रीकृष्ण की अनुकूलता पूर्वक अन्यान्य कामनाओं से रहित होकर किए जाते हैं वे ही भाव भक्ति को हृदय में आविर्भूत करते हैं, उन्हें ही साधन भक्ति माना गया है।

वैधी रागानुमा चेति सा द्विद्या साधनभिद्या।।[12]
साधन भक्ति दो प्रकार की है– 1. वैधी 2. रागानुगा

वैधी भक्ति : वैधी भक्ति उसे कहते हैं, जिसमें शास्त्रीय विधि वाक्यों या निर्देशों के आधार पर प्रवृति होती है, स्वाभाविक राग या रुचि उसकी प्रवर्तक नहीं होती।

शास्त्र के वचनों को सुन पढ़कर शास्त्र शासन–भय से अनेक लोग भक्ति करते हैं उनकी भक्ति वैधी भक्ति कहलाती है। यह वैधी भक्ति समस्त वर्णों और आश्रमों के लोगों के लिए नित्य विधि है। एकादशी के व्रत के समान ही इसका फल प्राप्त होता है। कर्मकांड निरूपक शास्त्रों में चार प्रकार के कर्मों का विधान किया गया है। 1. नित्य कर्म, 2. नैमित्तक कर्म, 3. काम्य कर्म 4. निषिद्ध कर्म। नित्य कर्म का लक्षण है–

'अकरणे प्रत्यवाय साधनानि नित्यानि' जिसके करने का कोई विशेष फल तो नहीं है परंतु जिन्हें न करने पर पाप उत्पन्न होता है, उनको नित्य कर्म कहते हैं। श्री रूप गोस्वामी जी ने वैधी भक्ति को नित्य कर्म में गिनाया है परंतु इसका विशेष फल है। वैद्यी भक्ति का अनुष्ठान करने वाले माया के बंधन से निर्भय हो जाते हैं।

यः केनाप्यति भाग्येन जात श्रद्धोस्य सेवने।
नातिसक्तो न वैराग्य भागस्यामधिकाकार्य्य सौ।।[13]

किसी अतिशय सौभाग्य से जिस व्यक्ति में श्री भगवान की सेवा की श्रद्धा उत्पन्न होती है और वह न तो अति आसक्तियुक्त हो एवं न वैराग्ययुक्त हो वह व्यक्ति साधन भक्ति का अधिकारी है।

श्री कृष्णचरणाम्भोजसेवविनिर्वृतचेतसाम्।
एषां मोक्षाय भक्तानां न कदापि स्पृहा भवेत ।।[14]

भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमलों की सेवा से जिसका चित्त एक बार तृप्त हो गया है उन भक्तों को फिर मोक्ष की कभी भी इच्छा नहीं होती है।

किंतु प्रेमैकमाधुर्यभुज एकान्तिनो हरौ।
नैवाङगीकुर्वते जातु मुक्ति पंचविद्यामपि।।[15]

भगवान के एकांत भक्त केवल भक्ति के माधुर्य का ही आस्वादन करते हैं, वे पाँचो प्रकार की मुक्ति को भी स्वीकार नहीं करते (सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य, सार्ष्टि और सारूप्य)।

शास्त्रतः श्रूयते भक्तौ नृमात्रस्याधिकारिता।
सर्वाधिकारिता माघस्नानस्य ब्रुवता यतः।
दृष्टान्तिता वाशिष्ठेन हरिभक्तिर्नृपं प्रति।।[16]

श्री मद्भागवत आदि शास्त्रों के अनुसार भक्ति में मनुष्यमात्र का अधिकार है। वशिष्ठ जी ने माघ स्नान में सबका अधिकार वर्णन करते समय भगवान की भक्ति को राजा के सामने दृष्टांत रूप में उपस्थित किया है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at
https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

भक्ति के अधिकारियों को भक्ति अंगों का अनुष्ठान न करने से दोष लगता है किंतु नित्य नैमित्तिक अन्य कर्म यदि वे नहीं करते तो उन्हें कोई दोष नहीं लगता। दैवयोग से उनसे यदि कोई निषिद्धाचरण हो जाता है तो भी उसके लिए कोई प्रायाश्चित करना आवश्यक नहीं है। वैष्णव–शास्त्रों के तत्ववेत्ताओं का यही सार निर्णय है।

श्री रूपगोस्वामी ने 'भक्तिरसामृतसिंधु' में भक्ति के 64 अंगों का सविस्तार विवेचन किया था और यह भी कहा था कि इनके अतिरिक्त भक्ति के और भी बहुत से अंग हो सकते हैं किंतु सब जगह सारे अंगों के उपयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती है। कहीं केवल एक मुख्य अंग के आश्रय से ही फल की प्राप्ति हो जाती है।

श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षितभवद्वैयासकिः कीर्तने
प्रह्लादः स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनेः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्।।[17]

श्री विष्णु के श्रवण मात्र से परीक्षित, कीर्तन मात्र से शुकदेव, स्मरण मात्र से प्रहलाद, उनके चरणों के सेवन से लक्ष्मी, पूजन से पृथु, अभिवादन से अक्रूर, हनुमान दास्य में, सख्य में अर्जुन और अपने सर्वस्व समर्पण में बलि को कृष्ण की प्राप्ति रूप में फल की प्राप्ति हुई है।

शास्त्रोक्तया प्रबलया तत्तन्मर्य्यादपाऽन्विता।
वैधी भक्तिरियं कैश्चिन्मयदामार्ग उच्यते।।[18]

शास्त्रों में कही हुई इस वैधी भक्ति को उस प्रबल मर्यादा से युक्त होने के कारण कुछ लोग मर्यादा मार्ग भी कहते हैं।

श्री रूप गोस्वामी ने वैधी भक्ति के निरूपण में चार बातों पर विशेष बल दिया है। 1. भक्तिमार्ग के साधक के लिए भक्ति का महत्त्व मोक्ष से भी अधिक है। 2. भक्ति का अधिकार मनुष्य मात्र को है, शूद्र भी भक्ति का अधिकारी है। 3. भक्त को प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं है। 4. कर्म भक्ति का अंग होता है किन्तु ज्ञान और वैराग्य उसके अंग नहीं है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

रागानुगा भक्ति : ब्रजवासी जनों में स्पष्ट रूप से विराजमान रागात्मिका (भावरूपा साध्य) भक्ति का अनुकरण करने वाली जो (साधन रूपा) भक्ति है वह रागात्मिका का अनुसरण करने के कारण 'रागानुगा' भक्ति कहलाती है।

रागानुगा भक्ति के दो भेद हैं–1 कामानुगा भक्ति, 2 संबंधानुगा भक्ति।
संभोगेच्छामयी तत्तद्भावेच्छात्मेति सा द्विधा।।[19]

(क) कामानुगा भक्ति : कामरूपा (साध्य भक्ति) का अनुगमन करने वाली तृष्णा कामानुगा (साधन भक्ति) कहलाती है। वह दो प्रकार की है– 1 सम्भोगेच्छामयी तथा तद्भावेच्छात्मिका।

1. सम्भोगेच्छामयी भक्ति– सम्भोगेच्छामयी का तात्पर्य मुख्य रूप से केलि–क्रीड़ा में होता है।
2. तदभावेच्छात्मिका भक्ति– इस में ब्रज गोपियों के प्रेम माधुर्य को प्राप्त करने की इच्छा प्रधान होती है। इसके साधन से कान्ताभाव की सेवा के उपयुक्त गोपीदेह की प्राप्ति होती है।

(ख) सम्बन्धानुगा भक्ति : पितृत्व आदि के मनन तथा आरोपण रूप जो भक्ति है उसको भक्तित्ववेत्ता संबंधानुगा भक्ति कहते हैं। स्वयं भगवान ने भी इस सिद्धांत को स्वीकार किया है कि वे भक्तों के आत्मा, प्रिय, सखा, गुरु, सुहृद, मित्र देवता एवं इष्ट देव हैं, जिस भाव से उनकी कोई सेवा करता है, वे उसी भाव से भक्तों द्वारा सेवित होते हैं। श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तों की केवल करुणा ही रागमार्ग में प्रवृत्ति का एकमात्र कारण है। कुछ लोग रागानुगा मार्ग को 'पुष्टिमार्ग' भी कहते हैं।

'भाव' प्राथमिक अवस्था है जो प्रेम को उत्पन्न करती है। 'प्रेम' भाव से उत्पन्न होने वाला और उससे उत्कृष्ट अवस्था है। इसलिए ग्रंथकार ने प्रेम को सूर्य और भाव को उसका अंश मात्र माना है।

भाव और प्रेम में कारण–कार्य भाव और सूक्ष्मता का तारतम्य है। उसी दृष्टि से ग्रन्थकार ने साध्य भक्ति में इन दोनों को बिल्कुल अलग–अलग स्थान दिया है। वैसे ये दोनों साध्य भक्ति के एक ही वर्ग में समाविष्ट हो सकती हैं। किन्तु साध्य रूपा भक्ति में भाव तथा प्रेम दोनों की अलग–अलग स्थिति मानकर इसके तीन भेद दिखलाए गए है।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

भाव भक्ति : मन की विशुद्ध सत्वप्रधान अवस्था का नाम 'भाव' है। इस अवस्था के उदय होने पर चित्त में विशेष प्रकार की आर्द्रता उत्पन्न हो जाती है इसलिए श्रीरूप गोस्वामी ने उसे 'चित्तमासृण्यकृत' कहा है। यह अवस्था आगे प्रकाशित होने वाले प्रेम सूर्य का उषाकाल है। सूर्योदय के पूर्व उषाकाल में जिस प्रकार सूर्य की अनुरागमयी रश्मियाँ उदय होकर विश्व के अंतस्तल में एक विशेष प्रकार की अद्‌भुत पावनता का संचार कर देती हैं। इसी प्रकार प्रेम सूर्य की पावन रश्मियों के सदृश 'भाव' उदय होकर चित्त में विशेष प्रकार के मासृण्य भाव को उत्पन्न कर देता है।

भक्त गणों में 'भाव' दो प्रकार से आविर्भूत होता है– 1 साधन अभिनिवेश से 2. श्री कृष्ण अथवा श्री कृष्ण भक्तों की कृपा से।

वैध–रागानुग–मार्गभेदेन परिकीर्तितः।
द्विविधः खलु भावोऽत्र साधनाभिनिवेशजः।।[20]

साधनाभिनिवेशजन्य भाव इसके भी दो प्रकार हैं।

1. वैधी भक्ति से जन्य 2. रागानुगा भक्ति से जन्य

साधन में अभिनिवेश से तात्पर्य है भजन–साधन में निष्ठा होना, निष्ठा पैदा होने पर रुचि तथा उसके बाद श्री भगवान में आसक्ति होती है। आसक्ति के बाद भाव उदित होता है। वैधी भक्ति के साधन अभिनिवेश से जो भाव उदित होता है, उसमें ऐश्वर्य ज्ञान का मिश्रण रहता है। रागानुगा भक्ति के साधन से जो भाव उदित होता है, वह ऐश्वर्य–ज्ञानहीन होता है।[21]

भगवत् कृपा जन्य भाव– साधनों के अनुष्ठान के बिना ही जो सहसा अचानक उदित हो उठता है वह भाव श्री कृष्ण भक्तों की कृपा से उत्पन्न होने वाला कहा गया है।[22]

साधन द्‌वारा श्री कृष्ण और श्रीकृष्ण भक्तों की कृपा द्‌वारा भाव उदय होने पर भाव प्राप्त–भक्तों में कुछ लक्षण (अनुभाव) प्रकाशित होते हैं–

क्षान्तिरव्यर्थकालत्वं विरक्तिर्मानशून्यता।
आशाबन्धः समुत्कण्ठा नाम गाने सदा रुचिः।।[23]

1. क्षान्ति (क्षोभ–शून्यता या सहनशीलता),
2. अव्यर्थकालत्व (समय को व्यर्थ न खोना),
3. वैराग्य (मोह रहित),
4. मान शून्यता (अभिमान रहित),
5. आशा बंध (भगवत कृपा प्राप्ति का आशायुक्त होना),
6. समुत्कण्ठा (भगवत् प्राप्ति की तीव्र उत्कंठा होना),
7. नाम–गान में सदा रुचि (नाम कीर्तिन में सदा रुचि),
8. भगवदगुण–कथन में सदा आसक्ति (श्रीकृष्ण के गुणों के वर्णन में आसक्ति),
9. उनके वास स्थल में अनुराग (प्रभु के निवास स्थान में प्रीति)।

इष्ट में स्वाभाविक रूप से परम आकर्षण का नाम 'राग' है। जो भक्ति राग से युक्त हो उसे रागात्मिका (भाव भक्ति) कहा जाता है।

रागात्मिका (भाव भक्ति) दो प्रकार की होती है। 1. कामरूपा 2. संबंध रूपा।

कामरूपा भक्ति : जो सम्भोग–तृष्णा को अपना अंग बना लेती है वह कामरूपा भक्ति कहलाती है। उसमें कामतृष्णा द्वारा अपने सुख की प्राप्ति के लिए नहीं अपितु केवल कृष्ण के सुख के लिए ही यत्न किया जाता है। अतः उसको काम न कहकर कामरूपा कहा जाता है। यह गोपियों में अत्यंत प्रसिद्ध रूप में पाई जाती है। उद्धव आदि भगवान के प्रियजन भी इस भक्ति की इच्छा रखते हैं। श्रीमदभागवत् (10/47/58) – में गोपियों की विरह अवस्था को देखकर उद्धव जी ने कहा था–

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो
गोविन्द एवं निखिलात्मनि रूढ़भावाः।
वान्छान्ति यद भवभियो मुनयो वयं च
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्त–कथारसस्य।।

इस पृथ्वी पर केवल गोपियों का ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है, क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्ण के परम प्रेममय दिव्य महाभाव में स्थित हैं। इस परम उत्कृष्ट अवस्था को संसार से भयभीत मुमुक्षजन ही नहीं, बड़े–बड़े मुक्त मुनिजन, हम भक्त भी वान्छा करते रहते हैं। गोपियों की तरह यदि श्रीकृष्ण की लीला कथा रस का चस्का नहीं लगा तो महाकल्पों तक बार–बार ब्रह्मा का जन्म पाने का भी क्या लाभ?

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

संबंध रूपा भक्ति : श्रीकृष्ण में पितृत्व आदि का अभिमान होना अर्थात् स्वयं को श्रीकृष्ण का पिता माता, सखा, दास आदि मानना ही 'संबंधरूपा भक्ति' है। श्री नन्द यशोदा आदि गोपगणों की संबंध रूपा भक्ति मानी गई है।

मुख्य रूप से भक्ति के दो भेद होते हैं– 1. साधन भक्ति 2. साध्य भक्ति। साध्य भक्ति के भाव भक्ति और प्रेम भक्ति नाम से दो भेद किए गए हैं। भाव और प्रेम दोनों साध्य भूत हैं। भाव भक्ति, प्रारंभिक श्रेणी है और प्रेम भक्ति उससे ऊँची अवस्था का नाम है। प्रगाढ़ प्रबल भाव का नाम ही प्रेम हो जाता है।

प्रेम भक्ति : भाव या रति जब गाढ़ता को प्राप्त होती है और उसके फलस्वरूप साधक का चित्त जब सम्यकरूप से द्रवीभूत होता है तथा श्रीकृष्ण में अतिशय ममता–युक्त हो जाता है तब ज्ञानीजन उसे 'प्रेम' कहते हैं।

भावोत्थोऽति प्रसादोत्थ : श्री हरेरिति स द्विधा।।[24]
प्रेम दो प्रकार का है 1. भावोत्थ और 2. श्रीहरि की कृपा से उत्पन्न।

भावोत्थ प्रेम : अंतरंग भक्ति अंगों का निरंतर अनुष्ठान करने से जब भाव परम उत्कर्ष को निरंतर प्राप्त करता है तब उस भाव को ही 'भावोत्थ–प्रेम' कहा जाता है।

श्रवण–कीर्तन आदि भक्ति के अंतरंग अंग हैं। उनका अनुष्ठान करने से भाव उदित होता है। अतिशय निष्ठा और आसक्ति सहित उन अंगों का अनुष्ठान निरंतर करते रहने से वह भाव गाढ़ता एवं परमोत्कर्ष को प्राप्त करता है, तब चित्त द्रवीभूत होता है और श्रीकृष्ण में अत्यंत ममता जाग्रत होती है तब वह भाव ही प्रेम में परिणत हो जाता है। साधन भक्ति वैधी एवं रागानुगा दो प्रकार की है। अतः भावोत्थ प्रेम भी दो प्रकार का है। 1. वैधभावोत्थ प्रेम 2. रागानुगीय भावोत्थ प्रेम।

हरेरति प्रसादोऽयं सङ्गदानादिरात्मनः।।[25]

श्रीहरि कृपा से उत्थित प्रेम : श्री भगवान की यह कृपा उनके संग दान से आरंभ होती है। श्री मद्भागवत (11/12/7) में श्रीकृष्ण ने उद्धव जी के प्रति कहा है– सुग्रीव, हनुमान, यज्ञपति, आदि ने वेदाध्ययन नहीं किया था। वेदाध्ययन के लिए इन्होंने वेद निष्णात महत्पुरुषों की भी उपासना नहीं की, किसी प्रकार का व्रताचरण भी नहीं

किया, कष्ट–साध्य कोई तपस्या भी नहीं की, केवल मेरे संग के कारण इन्होंने मुझे प्राप्त कर लिया।

यह भगवत् अति–प्रसादोत्थ प्रेम दो प्रकार का है– 1. माहात्म्यज्ञानयुक्त प्रेम 2. केवल अर्थात् माधुर्यमात्र ज्ञानयुक्त प्रेम।

माहात्म्यज्ञान युक्त प्रेम : प्रभु के माहात्म्य के ज्ञान से युक्त, अटल और सबसे अधिक स्नेह, भक्ति कहलाता है। सर्ष्टि, सालोक्य, सारूप्य एवं सामीप्य मुक्ति उसी भक्ति से होती है। विधि–मार्ग के साधक के चित्त में भगवान के माहात्मय तथा ऐश्वर्य का ज्ञान साधनों से जो प्रेम उदित होता है, वह माहात्म्य ज्ञान युक्त प्रेम कहलाता है। इस प्रेम में परिकरों की प्रीति सदा संकुचित रहती है।

केवल प्रेम : भगवान श्रीकृष्ण प्रेम से परिप्लुत, अन्य फलकामना से रहित मन की जो अविच्छिन्न गति है, उसे केवल प्रेम भक्ति कहते हैं और वह श्रीकृष्ण को वशीभूत करने वाली है।

रागानुगा–मार्ग के साधन का मूल कारण है श्रीकृष्ण सेवा का लोभ। इस मार्ग के साधक के चित्त में भगवान के माहात्म्य या ऐश्वर्य का ज्ञान रहते हुए भी माधुर्य की प्रबलता रहती है। ऐसे साधनों से जो प्रेम उदित होता है, वह 'केवल प्रेम' है। 'केवल प्रेम' के परिकरों में कोई भी संकोच नहीं रहता। इसमें प्रेम की ही अतिशयता रहती है। अतः श्री कृष्ण भी इस प्रेम के वशीभूत रहते हैं।

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽय भजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्तो निष्ठा रुचिस्ततः।।
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाऽभ्युद×चति।
साधकानामयं प्रेम्णः प्रादुर्भावे भवेत क्रमः।।[26]

प्रेम आविर्भाव के अनेक क्रम हो सकते हैं। श्री रूपगोस्वामी जी ने प्रेम के आविर्भाव का उल्लेख उपर्युक्त दो श्लोकों में किया है, सबसे पहले 1. श्रद्धा की उत्पत्ति होती है उसके बाद 2. साधुसंग तदनन्तर 3. भजन क्रिया तब 4. अनर्थ निवृत्ति उसके बाद 5. निष्ठा विश्वास उसके बाद 6. रुचि तदनन्तर 7. आसक्ति फिर 8. भाव उसके बाद 9. प्रेम का उदय होता है। साधकों के भीतर प्रेम के प्रादुर्भूत होने का यह क्रम बतलाया गया है।

जिस सौभाग्यशाली के चित्त में यह अपूर्व प्रेम उत्पन्न होता है उसकी मुद्रा अर्थात् परिपाटी, वाक्य एवं क्रियादि को शास्त्रवेत्ता भी नहीं समझ सकते। उनके चित्त में सुख होता है भगवत प्राप्ति से और यदि दुख होता है तो भगवान की अप्राप्ति में। इसके अतिरिक्त कोई सुख–दुख उनके चित्त को स्पर्श नहीं करता। प्रेमीभक्त लोकातीत होते हैं अतः उन्हें धन्य–धन्य कहा गया है।

संदर्भः

[1] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 4

[2] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्वांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 11

[3] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 6

[4] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्वांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 13

[5] वही

[6] श्री भागवत् (11/14/19)

[7] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 17

[8] वही, पृ0 सं0 18

[9] वही, पृ0 सं0 18

[10] वही, पृ0 सं0 22

[11] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 18

[12] वही, पृ0 सं0 18

[13] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 26

[14] वही, पृ0 सं0 30

[15] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 24

[16] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 38

[17] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 100

[18] वही, पृ0 सं0 102

[19] वही, पृ0 सं0 108

[20] वही, पृ0 सं0 116

[21] वही

[22] वही

[23] श्री भ0 र0 सि0, 1–3–25

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 05
March 2018

[24] श्री रूपगोस्वामी : भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक आचार्य विश्वेश्वर सिद्धांतशिरोमणि, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1963, पृ0 सं0 107

[25] श्री भ0 र0 सि0 1–4–9

[26] श्री रूपगोस्वामी : श्री भक्तिरसामृतसिन्धुः अनुवादक, प्रो0 प्रेमलता शर्मा, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998, प्रथम खण्ड, पृ0 सं0 138